• वाल्मीकि समाज-दशा और दिशा

सुमित्रा मेहरोल

वाल्मीकि समाज को दशाओं की दृष्टि से हम कई श्रेणियों में बाँट सकते हैं। प्रथम वर्ग है गाँव में रहने वाला वाल्मीकि समुदाय द्वितीय गाँव से पलायन कर शहरों की झुग्गी-बस्ती या अनऑथराइज्ड कॉलोनी में रहने वाला समुदाय, तृतीय शहरों में चतुर्थ या तृतीय श्रेणी की नौकरी या कोई बहुत ही छोटा व्यवसाय करने वाला वर्ग व चौथा प्रथम या द्वितीय श्रेणी की सरकारी या गैरसरकारी नौकरी करने वाला समुदाय। इन सभी श्रेणियों में से चतुर्थ श्रेणी तक पहुँचे हुए लोगों की संख्या अत्यंत कम है एवं उनकी समस्याएँ भी अर्थगत न होकर सामाजिक स्वीकार व अस्मिता की हैं।

अब हम आते हैं प्रथम श्रेणी पर। यह वर्ग गाँव में रहता है एवं अपने परम्परागत व्यवसाय अर्थात् मैला ढोने या सफाई कार्य में लगा हुआ है। आत्मकथा "जूठन" में ओम प्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल है कि कुत्ते बिल्ली गाय भैंस का छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चुहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था"1

घर की महिलाएँ सवर्ण वर्ग के घरों के मवेशियों का गोबर उठाकर एक नियत स्थान पर डालती हैं। पाखाना उठाने की समस्या यहाँ नहीं है, क्योंकि ग्रामों में शौच के लिए अधिकतर बाहर ही जाया जाता है या अब तो गाँवों में भी समृद्ध

लोगों के यहाँ फ्लश के शौचालय हैं। शौचालयों की सफाई वाल्मीकि समुदाय की महिलाएँ कहीं-कहीं करती हैं। इस समुदाय की महिलाओं के दर्द को सुशीला टाक भोरे जी ने अपनी आत्मकथा "शिकंजे का दर्द" में भली-भांति उकेरा है " सच यह था कब आया यौवन, जान न पाया मन, शिकंजे में जकड़ा जीवन, कभी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया! जिंदगी एक निश्चित की गई लीक पर चलती रही" (2)

महिलाएँ मदद के लिए अपने दस साल से ऊपर के बच्चे को ले जाती हैं। किन्हीं परिस्थितियों में इनके पति या परिवार के पुरुष सदस्य भी काम में इनका सहयोग करते हैं। मेहनताने के एवज में प्रत्येक परिवार से फसल के समय कुल फसल का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा इन्हें मिलता है। महिला को इस कार्य के अतिरिक्त अपने घर के समस्त घरेलू कार्य भी करने होते हैं। वाल्मीकि समुदाय के पुरुष सदस्य भू-पतियों के खेतों में सीजन के अनुसार मजदूरी करते हैं। एवज में बहुत ही कम राशि या अनाज इन्हें मिलता है। इसके अलावा वाल्मीकि ग्रामीण, परिवार मुर्गे, सुअर एवं बकरी भी पालते हैं। किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर मुर्गे एवं सुअर अच्छे दामों पर बिक जाते हैं। बकरी दूध के लिए भी पालते हैं एवं उसे बेचकर कुछ आय करना भी इनका उद्देश्य होता है।

बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य एवं उनके अच्छे भविष्य के लिए कोई योजना बना सकने का न तो इनमें कोई बोध होता है, न ही परिस्थितियाँ इन्हें कुछ

सोच पाने की इजाजत देती हैं। अशिक्षा के कारण अज्ञान, गलाज़त अंधविश्वास, जड़ और रुग्ण परम्पराओं का पालन, आपसी वैमनस्य इनमें कूट-कूट कर भरा होता है। पास में एक कौड़ी न होने पर भी इन्हें अपनी तथाकथित सामाजिक प्रतिष्ठा का बहुत ख्याल होता है। इसकी वजह से शादी-ब्याह, भात छोंछक, मुंडन, नामकरण एवं इसी प्रकार के अन्य रीति रिवाजों को निभाने के लिए यह आकंठ कर्ज में डूबे रहते हैं। बच्चों को स्कूल में वजीफे के लालच से दाखिला तो दिलवाते हैं किन्तु यदा-कदा ही भेजते हैं। खेतों में कटाई-बुआई के अवसर पर अपने साथ लगाए रखते हैं। बच्चों के अस्वस्थ होने पर दवा की बजाए सयाने, भगतों को दिखाया जाता है। इसी कारण अनेक अवसरों पर उचित दवा के अभाव में बच्चे काल कवलित भी हो जाते हैं। स्त्रियों को इतना काम करने के बाद भी पुरुषों की मार-पीट का सामना करना पड़ता है। इनका रहन-सहन, घर एवं खान-पान अति साधारण होता है।

हिन्दू जातियों में पाई जाने वाली सभी बुराइयाँ इन लोगों में होती हैं। महिलाओं में परदे की प्रथा पाई जाती है। महिला अपने पति से बड़े बुजुर्गों के सामने न केवल परदा किए रहती है, अपितु बात तक नहीं कर सकती। बड़े बुजुर्गों के सामने खाट या कुर्सी पर नहीं बैठ सकतीं। सारे दिन वह बाहर के और घर के कार्यों में लगी रहती हैं। परिवार प्रायः संयुक्त ही होते हैं।

बच्चों की दशा इनके यहाँ अत्यंत शोचनीय है। बचपन से ही उन्हें घर के काम-काज में डाल दिया जाता है। वह न केवल माँ के साथ सफाई कार्यों में उसकी मदद करते हैं, अपितु खेतों में भी काम करते हैं, घरेलू पशुओं के लिए चारा ढूंढ कर लाते हैं। सुअर, बकरी चराते हैं। लड़कियाँ घर का चौका-बरतन व पशुओं से संबंधित काम भी करती हैं। गाँव के स्कूलों में अधिकतर अव्यवस्था का साम्राज्य होता है। अध्यापक या तो आते नहीं, आते हैं तो पढ़ाते नहीं। ऐसे विद्यालयों की संख्या बहुत कम है, जहाँ सुचारू रूप से अध्ययन-अध्यापन होता हो। वैसे भी स्कूलों में वाल्मीकि बच्चों के साथ भेदभाव बरता जाता है। उन्हें पानी पीने के मटकों से प्रायः दूर रखा जाता है व बचपन से ही उनमें हीनता-बोध भरने हेतु उन्हें जाति-सूचक नामों से पुकारा जाता है।

वाल्मीकि जाति की पूजा पद्धति कुछ भिन्न है। इनके देवी-देवता जैसे माई बसंती, माई मदारन, भाई नथिया, सैय्यद बाबा, जहार पीर व इसी प्रकार के अनेक देवी-देवता हैं जिन्हें ये लोग पूजते हैं। जन्म एवं विवाह के अवसर पर जात बोली जाती है अर्थात् किसी विशिष्ट दिन को यह उस देवता के मंदिर में एक रात पहले पहुँच जाते हैं। सारी रात वहीं बिताते हैं। तड़के सुबह उठकर नहा-धोकर पूरी, हलवा, पूआ, कढ़ी, चावल एवं अन्य पूजा की वस्तुओं के साथ पूजा करते है। जात करने आए यह लोग ज्यादातर अपने कुटुम्ब के साथ

जाते हैं। हरिद्वार से बारह-चौदह किलोमीटर दूर रायवाला नामक स्थान पर इनके द्वारा पूजे जाने वाले देवी-देवताओं का स्थान अर्थात् मंदिर है। हर वर्ष जेठ माह के गंगा दशहरे को यहां मेला लगता है व दूर-दराज से लोग यहाँ आते हैं। पूरी रात ढोल-नगाड़े बजते रहते हैं व तड़के से पूजा अनुष्ठान शुरू हो जाता है। यहाँ पूजा के बाद घर पहुँच कर जात बोलने वाले को बिरादरी को भोज देना होता है जिसमें सूअर, मुर्गे, बकरे इत्यादि की बलि भी दी जाती है। नाते के हिसाब से वस्त्र एवं रुपये देकर रिश्तेदारों को विदा किया जाता है। इस प्रकार के आयोजनों को करने में ज्यादातर इस वर्ग के लोगों को कर्ज लेना पड़ता है, जिसे शायद ही यह लोग चुका पाते हों । एक तो गाँवों में एम.बी.बी.एस. डॉक्टर जाते नहीं हैं व यदि जाते भी हैं तो जीवन रक्षक औषधियों का प्रायः अभाव ही होता है। वाल्मीकि समुदाय इन डॉक्टरों से बच्चों का इलाज कराने की बजाए या तो भगत की शरण में जाता है या झोला छाप डॉक्टरों के पास या घरेलू इलाज कराते हैं, फलस्वरूप रोगी की दशा बिगड़ती ही जाती है।

इसी प्रकार वाल्मीकि समुदाय में अपनी नाक ऊँची रखने के लिए इस वर्ग के लोग विवाह एवं जन्म-मृत्यु के अवसरों पर अनावश्यक खर्च करते हैं एवं अपनी जान और भी साँसत में फँसा लेते हैं।

जो शहरों की ओर पलायन कर जाते हैं और वहां छोटा-मोटा रोजगार ढूंढकर बाद में अपनी पत्नी-बच्चों को भी वहाँ बुला लेते हैं, उनकी पत्नियाँ वहीं घरेलू

काम करने वाली बाई का या कोई और छोटा व्यवसाय ढूंढ लेती हैं। बच्चे माँ की मदद में लग जाते हैं। झुग्गी बस्तियों या अनधिकृत कॉलोनियों में प्रायः शिक्षा का माहौल नहीं होता। अपवादस्वरूप ही कुछ बच्चे इस माहौल में शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं।

वाल्मीकि समुदाय के बहुत थोड़े से लोग ही सरकारी या गैरसरकारी चतुर्थ या तृतीय श्रेणी की नौकरी में लगे हुए हैं। इनकी आर्थिक दशा कुछ अच्छी है। प्रायः रोटी-कपड़े की इन्हें समस्या नहीं होती! किन्तु सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश इनका क्यों का त्यों रहता है। बच्चों को यह सरकारी विद्यालयों में भेजते हैं किन्तु शिक्षा ग्रहण करने का माहौल प्रदान नहीं कर पाते, इसीलिए बच्चे आठवीं-नौवीं तक आते-आते पढ़ाई छोड़ देते हैं। अपवादस्वरूप ही कुछ बच्चे उच्च शिक्षा ग्रहण कर पाते हैं। इनमें बहुत थोड़े से व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त कर प्रथम पा द्वितीय श्रेणी की नौकरी पाते हैं और अपना व अपने परिवार का जीवन स्तर सुधारते हैं। ये अच्छे सुख-सुविधा सम्पन्न घरों में रहते हुए अच्छे भोजन-वस्त्रों का प्रयोग करते हैं और आगे अपने परिवार का पालन-पोषण भली प्रकार से करने की स्थिति में होते हैं! किन्तु इस वर्ग के लोग अलग किस्म की समस्याओं से स्वयं को घिरा हुआ भी पाते हैं। एक तो हीनता-बोध के कारण वह अपने परम्परागत वाल्मीकि समुदाय से सामंजस्य नहीं बैठा पाते, उन्हें डर होता है कि अपने समुदाय से उनका संबंध

यदि जगजाहिर हो गया तो लोग उन्हें हीन दृष्टि से देखते हुए उनका सामाजिक बहिष्कार कर देंगे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वाल्मीकि समुदाय के ये अफसर लोग समाज में अपनी जाति छिपा कर रहते हैं। अपने मूल समुदाय से प्रायः इनका विच्छेद हो गया होता है। वे लौटकर अपने समुदाय में नहीं जाना चाहते और बड़े बेमन से उनके साथ अपने संबंध निभाते हैं किन्तु अपने वर्तमान समकालीन समाज अर्थात सवर्ण जाति से संबंध रखने वाले सहकर्मियों, पड़ोसियों एवं परिचितों से सारी सावधानी बरतने के बाद भी प्रायः सब को उन की जाति के बारे में पता चल ही जाता है और तब वह ऊपर से सहज व्यवहार करते हुए भी वे उन तथा कथित दलित ब्राह्मणों को हृदय से अस्वीकार कर देते हैं। उनसे औपचारिक ही बने रहते हैं। दलित ब्राह्मण असमंजस की स्थिति में हैं। जिन्हें वे चाहते हैं वे उनको अस्वीकार करते हैं और जिनसे वे बचना चाहते हैं वे अपना उल्लू सीधा करने के लिए उनके पीछे दौड़ते हैं। वाल्मीकि समुदाय में प्रचलित रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों को दलित ब्राह्मण हृदय से छोड़ नहीं पाते, क्योंकि ज्यादातर के संस्कारों में वे रचे बसे होते हैं।

वाल्मीकि समुदाय के प्रति समाज की दृष्टि

अनादि काल से सवर्ण समाज वाल्मीकि समाज के प्रति असहिष्णु है। सफाई कार्यों में संलग्न होने के कारण और अत्यन्त निम्न जाति से संबंधित होने के कारण वे इनसे घृणा करते हैं। इनकी परछाई तक से दूर भागते हैं, छूना तो

दूर की बात है। गाँवों में सवर्ण समाज इन्हें अत्यंत हीन दृष्टि से देखता है। इनके प्रति तनिक-सा भी संवेदनशील नहीं है। घरों, मंदिरों में इनका प्रवेश वर्जित है। सवर्णों के कुएँ, तालाबों का यह प्रयोग नहीं कर सकते। इन्हें इनकी जाति के नाम से पुकारा जाता है। गाँव में पश्चिम की ओर इनकी बस्तियों होती है जहाँ ऐसा लगता है मानो नरक अपने साक्षात रूप में अवतरित हो गया हो। विद्यालयों में इनके साथ भेदभाव किया जाता है। सूरजपाल चौहान अपनी आत्मकथा तिरस्कृत में कहते हैं कि "जाति का पुछल्ला ब्रह्मराक्षस की तरह सदैव मेरे पीछे लगा रहा! संस्कृत विषय पढ़ाने वाले अध्यापक वेद पाल शर्मा मुझे समय समय पर जाति का ओछापन याद दिलाते रहते थे, मैं तड़प उठता था, उस द्रोणाचार्य की बात सुनकर! एक दिन अपने साथी अध्यापकों से मेरी ओर संकेत कर उसने कहा था कि यदि देश के सारे चुहड़े चमार पढ़ जाये तो गली मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा " 3 (पृष्ठ16)

देहातों में वाल्मीकि दूल्हे घोड़ी पर सवार होकर सवर्णों के घरों के आगे से नहीं निकल सकते। इस समुदाय के लोगों के साथ अमानवीयता की हद तक छुआछूत का व्यवहार किया जाता था "गेंदा लाला को मैंने तेल के बदले पैसे देने को हाथ बढ़ाया, तभी लाला ने पानी से भरे तसले की ओर संकेत करते हुए मुझसे कहा -" देख सामने पानी से भरो तसलो रखो है वा में पैसा डाल दे "--मैंने सहमते हुए दुअन्नी पानी से भरे तसले में डाल दी! लाला दुकान के अंदर

गया और चिमटी उठा कर लाया! उसने चिमटी से दुअन्नी पानी से भरे तसले से निकालकर अपनी गुल्लक में डाली और मैं तेल की कटोरी उठा कर चुपचाप घर की ओर चल दिया" 4 (पृष्ठ 33 "तिरस्कृत" सूरजपाल चौहान)

घृणित गर्हित कार्यों के लिए, खेतों में बेगार के लिए एवं सेवा कार्यों में इनकी उपयोगिता को देखते हुए इन्हें अपनी सुविधा के उपकरण के रूप में सवर्ण समाज इनका उपयोग करता है। शहरों में परिवेश कुछ बदल रहा है। कुछ कानून की बंदिशों के कारण एवं कुछ शहरी परिवेश के कारण यहाँ छुआछूत तो अधिक नहीं है किन्तु मन से इस वर्ग का स्वीकार-सम्मान वहाँ भी नहीं है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अतीत की अपेक्षा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इनकी स्थिति में सुधार के लिए सरकार द्वारा प्रयास किए गए हैं। छुआछूत कानूनन अपराध घोषित कर दिया गया है। जाति सूचक शब्दों का प्रयोग करना भी दण्डनीय अपराध है किन्तु यह कानून, कानून की किताबों से निकलकर समाज तक अभी पूरी तरह से प्रायः नहीं आए हैं। समाज में अभी भी इस वर्ग का अस्वीकार ही है।

समस्याएं

वाल्मीकि समाज को कालान्तर से समस्याओं का ही सामना करना पड़ा है और यह सिलसिला आज तक निरंतर बना हुआ है। इनकी समस्याओं

के मूल में मुझे दो मुख्य कारण दृष्टिगत होते हैं। प्रथम अशिक्षा एवं निर्धनता, द्वितीय इनकी अत्यंत हीन सामाजिक स्थिति।

अशिक्षित होने के कारण ये मूलतया अपने परम्परागत पेशे से ही बँधे रहते हैं और निर्धनता से इन्हें कभी भी छुटकारा नहीं मिल पाता। अज्ञानता के कारण अपने विषय में, अपने समाज के विषय में ये कोई विश्लेषण नहीं कर पाते। शोषक और शोषित का भेद नहीं कर पाते। अपने विषय में दूसरों की दृष्टि के औचित्य का आकलन नहीं कर पाते। अपनी वर्तमान स्थिति में सुधार के विषय में कोई रणनीति नहीं बना पाते। आजीवन शोषित होते हुए, श्रम करने के उपरांत भी, तिरस्कृत और अपमानित जिन्दगी स्वयं तो बिताते ही हैं, इसी जिन्दगी की सौगात अपनी आने वाली पीढ़ी को भी दे जाते हैं। अज्ञानता, जिसका मूल कारण अशिक्षा है, की वजह से यह आजीवन अंधविश्वासों, कुरीतियों, समाज को रसातल की ओर ले जाने वाली जड़ परम्पराओं को ढोते रहते हैं एवं अपने जीवन को और भी नारकीय बना लेते हैं।

समाज की इस वर्ग के प्रति अत्यंत असहिष्णु दृष्टि इस वर्ग के आत्मविश्वास को गहरी ठेस पहुंचाती है और आजीवन उसे हीन ग्रंथि से उबरने नहीं देती। यह समाज मुख्यधारा से बहिष्कृत है और अनेक प्रयत्नों के बाद भी लोगों की मानसिकता में कोई अधिक परिवर्तन नहीं आया है। शूद्रों से वे अतीत में भी घृणा करते थे और आज भी घृणा करते हैं। शहरों में शहरी

विवशताओं के चलते कुछ डर से और कुछ कानून के भय के कारण अपनी घृणा या प्रस्फुटन वे कुछ सीमाओं में आबद्ध होकर ही करते हैं।

अशिक्षा, निर्धनता, बेरोजगारी, श्रम का उचित मूल्य न मिलना, अंधविश्वास, कुरीतियाँ, मद्यपान, मलीन बस्तियाँ, प्रदूषित परिवेश, शिक्षा, स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का अभाव, योग्यता के अनुरूप काम का अभाव, स्त्रियों के प्रति संकुचित दृष्टि, झाड़-फँक, तंत्र-मंत्र, चिकित्सकीय सुविधाओं का अभाव इस वर्ग की समस्याएँ अनंत हैं।

समाधान

आज सबसे अधिक जरूरत इन्हें शिक्षित करने की है। इस संदर्भ में शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करना सरकार का पहला काम होना चाहिए। सरकार ने शिक्षा तो निःशुल्क कर दी है किंतु विद्यालयों में प्रशासन के स्तर पर जो मनमानी हो रही है उसे सरकार अनदेखा कर रही है। नीति बनाने से कुछ नहीं होगा। आवश्यकता है उसे कड़ाई से लागू करने की। ग्रामीण एवं पर्वतीय अंचलों में शिक्षक वर्ग अपना दायित्व सही ढंग से नहीं निभा रहा है। न तो वह ग्रामवासियों में शिक्षा के प्रति अलख जगा रहे हैं और न ही पूर्ण निष्ठा के साथ अपने विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। वह महीने के कुछ दिन ही विद्यालय आते हैं और बाकी दिन के लिए कोई उन्हें कुछ कह ना दे, इसके एवज में एक निश्चित रकम संबंधित अधिकारी तक पहुँचाते हैं। इनकी

मजबूरी अक्सर यह होती है कि इनका निवास इनके कार्यस्थल से काफी दूर होता है, जहाँ से नित्य यह ड्यूटी करने आ नहीं पाते। ऐसे अनेक उदाहरण भारत में देखने को मिल जाएंगे।

जो शिक्षक गाँव में ही रहते हैं, वह देखते हैं कि दूसरे तो आ नहीं रहे और उनका कुछ बिगड़ नहीं रहा, तो हम ही काम क्यों करें। अपना नैतिक दायित्व निभाना आज दोयम दर्जे की बात हो गयी है। परिणामतः शिक्षा के क्षेत्र में बच्चों की जड़ ही कमज़ोर हो रही है। तीसरी-चौथी तक पहुँचे बच्चे को अ, आ, इ, ई तक नहीं आता यह स्थिति केवल शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं है अपितु अनेक कल्याण योजनाओं के क्षेत्र में भी व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण आशाजनक परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं।

सरकार को चाहिए कि देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के लिए कोई सुदृढ़ नीति बनाए, जिससे देश तथा देश में रहने वाला यह वर्ग उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके। समाज को भी चाहिए कि वह अपनी सोच में परिवर्तन लाकर इन्हें मनुष्य का दर्जा प्रदान कर, मुख्य धारा में शामिल करे। शिक्षित होने के बाद यह अपना आकलन कर अपने समाज में व्याप्त बुराइयों को धीरे-धीरे स्वयं ही छोड़ देंगे। किन्तु यह एक सतत प्रक्रिया है जिसे लगातार होते रहना चाहिए

संदर्भ ग्रंथ सूची

1-- जूठन (आत्मकथा) ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृष्ठ 3 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

2-- शिकंजे का दर्द (आत्मकथा) सुशीला टॉकभोरे (पृष्ठ 64) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

तिरस्कृत (आत्मकथा) सूरजपाल चौहान, पृष्ठ 16, अनुभव प्रकाशन नई दिल्ली

4 तिरस्कृत (आत्मकथा) सूरजपाल चौहान, पृष्ठ 33, अनुभव प्रकाशन नई दिल्ली

डॉ सुमित्रा महरौल

9650466938

D -160, ग्राउंड फ्लोर, रामप्रस्थ कॉलोनी, गाजियाबाद 201011

उत्तर प्रदेश